लुई पाश्चर

एक महान वैज्ञानिक

एस. महादेवन

एक वैज्ञानिक के लिए विज्ञान के एक क्षेत्र विशेष में योगदान ही उसके लिए असीम आनंद व गर्व की बात होती है। एक क्षेत्र से आगे निकलकर अन्य क्षेत्रों में भी उसी दक्षता से कार्य करना हर किसी के बस की बात नहीं होती। अगर कोई वैज्ञानिक ऐसा करता है तो निश्चित तौर पर उसे विलक्षण ही माना जाएगा। ऐसे ही महान वैज्ञानिकों की जमात में शामिल थे-लुई पाश्चर। वे क्या नहीं थेः रसायनज्ञ, सूक्ष्म जीव वैज्ञानिक, प्रतिरक्षण वैज्ञानिक और जैव तकनीकीविद। हर तरह की भूमिका उन्होंने पूरी मुस्तैदी से निभाई। उन्होंने आणविक विन्यास रसायन शास्त्र की स्थापना की, आधुनिक सूक्ष्म जीव विज्ञान की नींव रखी, स्वतः जनन के सिद्धांत का खंडन किया, किण्वन के जीवाणु आधार का प्रतिपादन किया और जीवाणुओं व विषाणुओं से होने वाली कई बीमारियों से लड़ने के लिए टीकों का विकास किया।

पाश्चर अपने एक जीवनकाल में ही मानव कल्याण के लिए इतना कुछ कर गए कि अन्य व्यक्ति कई जीवन मिलने पर भी शायद ही कर पाते। उन्होंने अपनी सोच को सदैव तर्क और कार्य-कारण की कसौटी पर ही परखा। इससे आधुनिक वैज्ञानिक नज़रिए के विकास में सहायता मिली।

लुई पाश्चर का जन्म सन 1822 में फ्रांस के डोले नामक गांव में एक चर्मकार परिवार में हुआ था। उनके पिता ज़्यां पाश्चर ज़्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे। पास के ही एक कस्बे आर्बोइस में पले-बढ़े लुई की रुचि ज़्यादातर मछली पकड़ने और चित्रकारी करने में ही थी। उनमें पोर्ट्रेट पेंटिंग बनाने की गजब की प्रतिभा थी। शुरुआती अध्ययन के दौरान उनकी छिपी वैज्ञानिकता सामने नहीं आ पाई और वे एक सामान्य छात्र ही माने जाते थे। थोड़े बड़े होने पर उन्होंने रसायन में दिलचस्पी लेनी शुरू की।

लुई पाश्चर (1822-1895)

आणविक विन्यास रसायन

लुई पाश्चर ने अपनी पहली खोज तब की थी जब वे पेरिस में एकोले नार्मेल सुपीरियेर की एंटोनी बैलार्ड प्रयोगशाला में पीएच.डी. कर रहे थे। इस खोज ने लुई को अचानक सुर्खियों में ला दिया। वे टार्टेरिक एसिड पर शोध कर रहे थे जो प्राकृतिक रूप से इमली व अंगूरों में पाया जाता है (और शराब की बोतल में पेंदे में एकत्र हो जाता है) और जिसे रासायनिक रूप से भी बनाया जा सकता है। यह पहले से ही ज्ञात था कि प्राकृतिक रूप से प्राप्त टार्टेरिक एसिड सीधे जा रहे ध्रुवीकृत प्रकाश को दाईं ओर मोड़ सकता है, जबकि पैराटार्टेरिक एसिड या कृत्रिम रूप से बनाए गए एसिड में ऐसा नहीं होता है।

इसका समाधान तब निकला जब लुई ने कृत्रिम एसिड के रवों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। उन्हें मिश्रण में दो प्रकार के रवे मिले जो अलग-अलग सममिति दर्शाते थे। इन दोनों की बनावट एक-दूसरे का प्रतिबिंब थी। दोनों प्रकार के रवों को अलग-अलग करके लुई ने दिखाया कि

उनका विन्यास ध्रुवीकृत प्रकाश को विपरीत दिशा में घुमा सकता है। रेसमिक मिश्रण ऐसे दो प्रकार के रवों के मिश्रण को कहते हैं जो ध्रुवीकृत प्रकाश को दो विपरीत दिशाओं में घुमाता है और इस प्रकार ये दोनों घुमाव एक-दूसरे को निरस्त कर देते थे। इस तरह लुई ने आणविक विन्यास रसायन की कुंजी खोज निकाली। उस समय लुई महज 25 साल के थे।

इस खोज के तुरंत बाद लुई को डाइजोन में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर का पद ऑफर किया गया। वर्ष 1849 तक उन्होंने स्ट्रॉसबर्ग में प्रोफेसरशिप का दायित्व संभाल लिया और अणुओं की असममिति पर अपना काम जारी रखा। स्ट्रॉसबर्ग में ही उन्होंने यूनिवर्सिटी के रेक्टर की बेटी मेरी लौरां से विवाह कर लिया। जल्दी ही उन्होंने रसायनों के निर्जीव संसार को अलविदा कहकर जीवों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। औद्योगिक शहर लिली में घटित कुछ घटनाओं ने उन्हें ऐसा करने को प्रेरित किया था, जहां वे 1854 में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर बनकर गए थे।

शराब किण्वन

लिली शहर में शराब की कई फैक्ट्रियां थीं। उसी दौरान एक शराब निर्माता शराब निर्माण में बार-बार आने वाली एक समस्या के समाधान के लिए लुई से मिले। समस्या यह थी कि किण्वन के दौरान शराब की बजाय सिरका या लेक्टिक अम्ल बन जाता था। इससे भारी आर्थिक नुकसान हो रहा था।

जर्मनी के कोशिका विज्ञानी और जीवन के कोशिका सिद्धांत के सह-प्रतिपादक थियोडोर श्वान 1830 के दशक में ही शराब के हौज में जीवित खमीर कोशिकाओं की उपस्थिति का पता लगा चुके थे। जब लुई ने उन विभिन्न खमीरों का अध्ययन किया जिनमें सामान्य शराब का निर्माण हुआ था, तो उन्होंने एक नए सिद्धांत को जन्म दे दिया। उन्होंने देखा कि जब शराब अच्छी अवस्था में थी, उस समय खमीर कोशिकाएं गोल, फूली हुई और एकरूपता लिए हुए थीं। सभी खराब शराब में विभिन्न सूक्ष्मजीवों का मिश्रण था, कुछ गोलाकार थे, तो कुछ लंबाकार। यह सीधा-सीधा जीवाणु मिलावट का मामला था। इससे साफ था कि गोलाकार खमीर तो शराब-किण्वन में मददगार थे, जबकि लंबाकार खमीर 'अवांछित' किस्म के तत्व थे जो शराब को प्रदूषित करने का काम करते थे।

सवाल यह उठा कि आखिर किसी शराब को प्रदूषित होने से कैसे बचाया जा सकता है? इसके लिए उन्होंने शराब को गर्म करके ठंडा करने की सलाह दी। उनके अनुसार इससे शराब को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकेगा। इस प्रक्रिया को उन्हीं के नाम पर 'पाश्चरीकरण' कहा गया। इसी का इस्तेमाल आजकल दूध डेयरियां भी करती हैं। थैलियों में दूध को भरने से पहले उत्पाद को इसी प्रक्रिया से गुजारा जाता है। अन्य खाद्य उत्पादों, जैसे फ्रूट जूस इत्यादि को लंबे समय तक खराब होने से बचाने के लिए भी पाश्चरीकरण किया जाता है।

किण्वन सिद्धांत पर विवाद

लुई के किण्वन सिद्धांत को लेकर वैज्ञानिक जगत में वाद-विवाद भी शुरू हो गया। बहस इस बात पर थी कि किसी निर्जीव चीज़ में अपने आप जीवाणुओं का विकास कैसे हो सकता है? सवाल यह भी था कि शराब में खमीर कहां से आता है? क्या वह बाहर से आता है या शराब निर्माण की प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होता है? लुई को इस बात पर हैरानी थी कि करीब सौ साल पहले इटली के जीव वैज्ञानिक स्पेलेन्ज़नी के शानदार प्रयोगों और कुछ साल पहले ही थियोडोर श्वान के मशहूर प्रयोग के बावजूद जीवाणुओं के अपने आप पैदा होने का सवाल जीवित था। इन सिद्धांतकारों की आलोचना का मुख्य तर्क यह था कि किसी पदार्थ को गर्म करने से उसका एक गैसीय तत्व हवा में ओझल हो जाता है, जो जीवाणुओं के पैदा होने में मददगार होता है। पात्र को सील कर देने से वह तत्व वापस प्रवेश नहीं कर पाता है। केवल इसी वजह से गर्म पदार्थ सुरक्षित रहता है।

लुई ने कई प्रयोगों के ज़रिए इन सवालों के जवाब दिए। उन्होंने सबसे पहले दिखाया कि शराब में खमीर

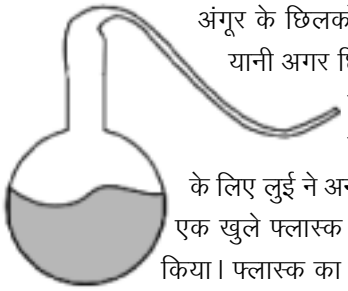

अंगूर के छिलकों की वजह से पैदा होता है। यानी अगर छिलकों के बगैर अंगूर का रस निकाल लिया जाए तो खमीर नहीं उठेगा। पूरा जवाब देने के लिए लुई ने अनोखा तरीका अपनाया। उन्होंने एक खुले फ्लास्क में शोरबा और फ्रूट जूस गर्म किया। फ्लास्क का मुंह हंस की गर्दन के आकार का था, यानी पतला और नीचे की तरफ झुका हुआ, ताकि उसमें से हवा को आने-जाने का मौका तो मिले, लेकिन धूल-मिट्टी को रोका जा सके। यह शोरबा कई दिनों तक खराब नहीं हुआ। पेरिस स्थित पाश्चर इंस्टीट्यूट में तो आज भी ऐसे कुछ फ्लास्क रखे हुए हैं जिनमें रखा शोरबा एक सदी बाद भी खराब नहीं हुआ है। कुछ इतिहासकार लुई की इस बात के लिए आलोचना करते हैं कि उन्होंने अपने उक्त सिद्धांत के लिए अपने पूववर्ती सिद्धांतकारों, विशेषकर श्वान को उचित श्रेय नहीं दिया।

रेशम का कीड़ा

वर्ष 1857 में लुई पाश्चर एकोले नार्मेल में वैज्ञानिक शोध के निदेशक बन गए। उस समय यूरोप का रेशम उद्योग रेशम कीट की बीमारी से जूझ रहा था। शराब उद्योग की समस्या के समाधान में लुई को मिली सफलता फ्रांस के कृषि विभाग के सामने थी। इसी के मद्देनज़र उनसे इस समस्या के समाधान में भी मदद मांगी गई।

रेशम कीटों में बीमारी की वजह भी सूक्ष्म जीवाणु ही माने गए। हालांकि लुई पक्के तौर पर यह पता नहीं लगा पाए कि आखिर इस बीमारी का मूल तत्व क्या था। लेकिन इसके बावजूद वे ऐसा उपाय सुझाने में सफल रहे कि बीमार कीड़ों से स्वस्थ रेशम कीड़ों को कैसे अलग किया जाए। इससे रेशम उद्योग में इस बीमारी के प्रसार पर नियंत्रण हुआ।

हैज़ा और एंथ्रैक्स

वर्ष 1878 में लुई को मुर्गी के हैज़े की बीमारी को लेकर सफलता मिली। हालांकि इसमें एक संयोग व किस्मत का भी हाथ था। वर्ष 1876 तक बीमारी का रोगाणु सिद्धांत (जर्म थ्योरी) आकार लेने लगा था। यह रॉबर्ट कोच द्वारा एंथ्रैक्स पर किए गए प्रारंभिक कार्य पर आधारित था। यह पता चल चुका था कि मुर्गियों में हैज़ा बैक्टीरिया की वजह से होता है। लुई ने पाया कि जब चूज़ों को हैज़े के बैक्टीरिया से निर्मित ताज़ा कल्चर का इंजेक्शन दिया गया तो वे तुरंत मर गए। इसके विपरीत जब उन्हें पुराने कल्चर का इंजेक्शन दिया गया तो वे थोड़े कमज़ोर ज़रूर हुए, लेकिन बच गए। इस प्रकार पुरानी कोशिकाओं के इंजेक्शन ने उनमें प्रतिरक्षण क्षमता उत्पन्न कर दी।

यह एक बहुत ही अहम खोज थी। एक बार के लिए तो लुई को यह लगा कि उन्होंने सभी रोगों से लड़ने की रामबाण विधि खोज निकाली है। हालांकि बाद के प्रयोगों से यह साबित हो गया कि जिस बीमारी के बैक्टीरिया को इंजेक्ट किया जाएगा, केवल उसी रोग से बचाव हो सकेगा।

इन नतीजों ने उन्हें यही विधि एंथ्रैक्स के मामले में भी आज़माने को प्रेरित किया। उन्होंने संक्रमित पशु के रक्त से एंथ्रैक्स का टीका तैयार किया। हालांकि कुछ मौकों पर पशुओं को दिए गए ये टीके विफल रहे, लेकिन सफलता की दर कहीं अधिक थी। उन्होंने वर्ष 1881 में फ्रांस के एक गांव पोउली ली फोर्ट में अपने इस टीके का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन किया था, जो काफी प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने 24 भेड़ों को इसके टीके लगाए; साथ ही इतनी ही संख्या में भेड़ों को टीके न लगाकर उन पर नज़र रखी गई। बाद में देखा गया कि जिन भेड़ों को टीके लगाए गए थे, वे सभी तो बच गईं, लेकिन अन्य भेड़ें एंथ्रैक्स से मारी गईं। इस सफलता के बावजूद रॉबर्ट कोच सहित कई लोगों का मानना था कि लुई ने इस टीके के प्रयोग में जल्दबाज़ी की थी। लुई और कोच के बीच इसी बात को लेकर काफी विवाद भी हुआ। रॉबर्ट कोच इस बात से खफा थे कि एंथ्रैक्स पर प्रारंभिक कार्य उन्होंने किया, लेकिन एंथ्रैक्स टीके की खोज का श्रेय अकेले लुईस पाश्चर ले गए।

रैबीज़ का टीका

वर्ष 1882 में लुई 60 साल के हो चुके थे। उनकी

सेहत भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी, लेकिन इसी समय उन्होंने अपनी ज़िंदगी की सबसे अहम खोज यानी रैबीज़ के टीके पर काम शुरू किया। हाइड्रोफोबिया के नाम से जाने जाने वाली यह रैबीज़ बीमारी काफी खतरनाक थी जिसमें रोगी की बड़ी ही त्रासद मौत होती थी। हैज़ा व एंथ्रैक्स के अनुभवों से लुई को यह अंदाज़ा था कि रैबीज़ में भी कोई न कोई रोगाणु ज़रूर होगा। हालांकि संक्रमित पशु के खून या लार में ऐसा कोई बैक्टीरिया नहीं मिला जिसे इस बीमारी से सम्बंधित माना जा सके। लुई का अब भी मानना था कि रोगाणु तो अवश्य है, भले ही वह अदृश्य हो। आज हम जानते हैं कि रैबीज़ एक वाइरस से होता है। यह वाइरस इतना सूक्ष्म होता है कि उसे उस समय उपलब्ध माइक्रोस्कोप से देखना संभव नहीं था।

आम तौर पर पागल कुत्ते के काटने के काफी अंतराल के बाद रैबीज़ के लक्षण नज़र आते हैं। रैबीज़ का सीधा असर मस्तिष्क पर पड़ता है। इसी से लुई इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि मस्तिष्क तक रोगाणु तंत्रिका तंत्र और मेरु रज्जु के ज़रिए पहुंचता होगा। लुई और उनके सहयोगी जानते थे कि रैबीज़ के अध्ययन के दौरान उनकी ज़िंदगी पर भी खतरा हो सकता है, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने संक्रमित पशुओं पर कार्य शुरू किया था।

लुई और उनके सहयोगी एमिल रॉक्स ने संक्रमित खरगोश के मेरु रज्जु से अर्क निकालकर उसे दो सप्ताह तक सुखाया। फिर उसे प्रयोगशाला के कुत्ते को इंजेक्ट किया गया। अब उस कुत्ते में बीमारी के कोई लक्षण नहीं थे। यही नहीं, जब यह प्रयोग ताज़े अर्क के साथ किया गया, तब भी पशु बच गए। इस प्रकार लुईस पाश्चर और रॉक्स ने रैबीज़ के टीके की खोज कर ली।

एंथ्रैक्स के समय उठे विवाद के मद्देनज़र लुईस इस बार कहीं अधिक सतर्क थे। उम्र और अनुभव ने उन्हें शायद धैर्य रखना सिखा दिया था। अपनी खोज के प्रति आश्वस्त होने के बावजूद वे मानव परीक्षण के लिए अभी तैयार नहीं थे। लेकिन इस बार फिर संयोग उनके साथ था। नौ साल के एक लड़के जोसेफ मीस्टर को एक पागल कुत्ते ने बुरी तरह काटा था। उसकी मां ने लुई से अपने बेटे की जान बचाने की प्रार्थना की। एक मां के अनुनय-विनय और डॉक्टरों की अनुशंसा ने लुई को टीके का मानव पर परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने दो सप्ताह तक बालक का इलाज किया। इस दौरान उसे संक्रमित पशु के मेरु रज्जु के अर्क का इंजेक्शन लगाया गया। नतीजा सकारात्मक निकला। बालक बच गया और उसने बड़े होकर पाश्चर इंस्टीट्यूट में वर्षों तक गेटकीपर के रूप में कार्य किया।

इस प्रकार लुई पाश्चर इतिहास बना चुके थे। उनका नाम किंवदंती बन चुका था। वे चिकित्सक नहीं थे, लेकिन इसके बावजूद उनके सामने पूरे यूरोप से रैबीज़ के रोगियों की लाइन लगी रहती थी।

अपने पूरे शानदार कैरीयर के दौरान लुई पाश्चर को वैज्ञानिक समुदाय का भरपूर सम्मान मिला। रैबीज़ टीके की खोज के बाद तो पाश्चर इंस्टीट्यूट के निर्माण के लिए सार्वजनिक तौर पर पैसा जुटाया गया। इंस्टीट्यूट में रैबीज़ रोगियों का उपचार किया जाने लगा।

रैबीज़ टीके के विकास ने लुई को सर्वाधिक लोकप्रियता दिलवाई, लेकिन यही उनके जीवन की आखिरी खोज साबित हुई। स्वास्थ्य खराब होने की वजह से वे दिन-प्रति-दिन खुद को कार्य करने में असमर्थ पाने लगे। 70 साल की उम्र में उन्हें फ्रेंच रिपब्लिक ने विशेष पदक से सम्मानित किया। वर्ष 1895 में उन्हें सूक्ष्म जीव वैज्ञानिकों को दिया जाने वाला सर्वोच्च सम्मान ल्यूवेनहूक पदक प्रदान किया गया। इसी साल उनका निधन हो गया।

यहां गौरतलब है कि इस पूरे जीवन-सफर में उनकी पत्नी पूर्ण समर्पण भाव से उनके साथ रही। लुई का अंतिम संस्कार उतने ही सम्मान से किया गया, जैसा एक राष्ट्रीय नायक को उसके निधन पर दिया जाता है। उन्हें नोत्रेडेम कैथेड्रल में दफनाया गया। बाद में उनकी अस्थियों को पाश्चर इंस्टीट्यूट के गर्भगृह में रख दिया गया।

तुनकमिज़ाजी और किसी अन्य को श्रेय न देने सरीखी कमियों के बावजूद लुई को दुनिया के श्रेष्ठ वैज्ञानिक के रूप में याद रखा जाएगा। मानव जाति को उनका योगदान अमूल्य है जिसकी वजह से अब तक लाखों ज़िंदगियां बच चुकी हैं। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***